शिकायतों का निवारण और सूचना का अधिकार

श्वेता मिश्रा

lkjk'k *प्रशासन और नागरिक एक -दूसरे के अभिन्न अंग हैं। दोनों आपस में पूर्णतः जुड़े हुए हैं। प्रशासन का मूल उद्देश्य नागरिकों का कल्याण करना है और इसी उद्देश्य से वह उनके लिए जीवन की बुनियादी सुविधाएँ, जैसे– शिक्षा, स्वास्थ्य, बिजली, रोजगार के अवसर, स्वच्छ पेय जल, बेहतर बुनियादी ढांचा, इत्यादि मुहैया कराता है। किसी भी प्रशासनिक प्रणाली की सफलता नागरिकों तक प्रभावी और कुशल सेवाओं के वितरण पर निर्भर करती है। प्रशासन अकेले इन सेवाओं को नागरिकों को नहीं प्रदान कर सकता। इसके लिए नागरिकों का सहयोग और समर्थन काफी हद तक आपेक्षित है। दूसरे शब्दों में, सेवा वितरण प्रक्रिया में नागरिकों को सक्रिय भागीदार बनना होगा और प्रशासन के साथ सहयोग करना होगा। समकालीन संदर्भ में देखा जाए तो, राज्य के कार्यों और शक्तियों में चौमुखी वृद्धि हुई है जिसकी वजह से प्रशासन का क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक व्यापक हो गया है। देश के सामाजिक -आर्थिक विकास में यह महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और इस प्रक्रिया में, इसने व्यापक विशेषाधिकार हासिल कर लिया है।*

प्रस्तावना

सामान्य तौर पर यह अनुभव किया गया है कि इन व्यापक प्रशासनिक शक्तियों के प्रयोग में, कुप्रचलनों, भ्रष्टाचार तथा नागरिकों के शोषण की संभावनाएं सदैव विद्यमान रहती हैं। इसलिए अब यह महसूस किया जा रहा है कि नागरिकों की शिकायतों का निवारण तंत्र, जो पहले से उपलब्ध है, अपने आप नागरिकों को संरक्षण देने में लगभग असमर्थ और अपर्याप्त है क्योंकि यह देखा गया है कि प्रशासक अपनी सार्वजनिक शक्ति के प्रयोग में अक्सर मनमानी करता है और इसका दुरूपयोग करने में भी परहेज नहीं करता। यही कारण है कि लोकतांत्रिक देशों में रहने वाले लोगों का ध्यान उत्तरी यूरोप के देशों की ओम्बुडसमैन संस्था की ओर स्वतः आकृष्ट हुआ है।

इस लेख में शिकायत निवारण तंत्र के विभिन्न प्रयासों की विस्तृत विवेचना करते हुए, सूचना के अधिकार के विभिन्न आयामों पर विशेष चर्चा की गई है।

नागरिकों की शिकायतों के निवारण के लिए मशीनरी

रोवसन (1956) के अनुसार, सरकार और जनता के बीच अच्छे संबंधों का मामला केवल सिविल सेवकों और राजनेताओं के आचरण पर निर्भर करता है। वास्तव में, यह नागरिकों, समूहों, निगमों, सभी प्रकार के संघों, अनौपचारिक निकायों के व्यवहार पर निर्भर करता है। यदि हम चाहते हैं कि लोक सेवक हमारे प्रति अच्छा व्यवहार रखें, तो हमें भी उनके प्रति अच्छा व्यवहार रखना होगा।

1950 के दशक का अवलोकन आज भी उतना ही सत्य है। लोकतंत्र में, नागरिकों की शिकायतों के निवारण के लिए उचित तंत्र अनिवार्य हो जाता है। नागरिक अपने प्रतिनिधियों को चुनते हैं और उन्हें शासन करने की शक्ति प्रदान करते हैं। यदि लोक प्राधिकरण नागरिकों की जरूरत और आकांक्षाओं पर खड़ा नहीं रहता है, और सत्ता का दुरूपयोग करना शुरू करते हैं, तो लोकतंत्र का उद्देश्य विफल हो जाता है। ऐसी स्थिति में, एक ऐसी मशीनरी की जरूरत होती है, जहाँ नागरिक अपनी शिकायत को दर्ज करा सकें।

चैम्बर शब्दकोश के अनुसार, 'शिकायत' का अर्थ है शिकायत का आधार, उत्पीड़क और गलत होने की स्थिति का अनुभव होना है। सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा नागरिकों की मांगों और अपेक्षाओं की पूर्ति न होने के कारण शिकायत उत्पन्न होती है। अतः शिकायत के निवारण की आवश्यकता होती है। इसे ध्यान में रखते हुए, दुनिया भर में, कई देशों ने कई प्रावधान बनाए हैं और भारत इसका कोई अपवाद नहीं है।

ओम्बुडसमैनः स्कैन्डिनेवियन संस्था

लोक शिकायतों के निवारण के लिए सबसे पहली लोकतांत्रिक संस्था ओम्बुडसमैन है। इसकी स्थापना पहली बार 1809 में स्वीडन में और उसके पश्चात् 1919 में फिनलैंड, 1955 में डेनमार्क, 1962 में नार्वे और न्यूज़ीलैण्ड तथा 1967 में यू. के. में हुई। यह एक ऐसी संस्था है जो न सिर्फ नौकरशाही की शक्तियों को नियंत्रित करती है बल्कि नागरिकों की शिकायतों के निवारण की भी एक प्रभावी एजेंसी है। यह प्रशासकों द्वारा कुप्रशासन या जानबूझकर उपेक्षा के मामले के विरूद्ध आवश्यक सुधारात्मक कदम उठाने में सक्षम है। (जैन 1976, पृ. 359)।

ओम्बुडसमैन, एक स्वीडिश शब्द है जिसका अर्थ है एक ऐसा अधिकारी जिसकी नियुक्ति विधायिका द्वारा न्यायिक कार्रवाई और प्रशासनिक शिकायतों को दूर करने के लिए होती है। (रोबट, 1968, पृ. 7-36) यह उस व्यक्ति को प्रदर्शित करता है जो दूसरों के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। सामान्य तौर से ओम्बुड्समैन को ऐसा व्यक्ति माना जाता है जो संभावित कुप्रशासन के खिलाफ नागरिकों की रक्षा के लिए नियुक्त किया जाता है।

स्कैन्डिनेवियन देशों के साथ-साथ राष्ट्रमंडल देशों में ओम्बुडसमैन की सफलता के पश्चात, दुनिया भर के कई देशों में अलग-अलग नामों और कार्यों के साथ ओम्बुडसमैन जैसी संस्थानों का निर्माण किया गया। भारत में भी इस संस्था ने लोगों का ध्यान आकृष्ट किया है।

भारत में शिकायत निवारण तंत्र

स्वतंत्रता के पश्चात, नागरिकों की शिकायतों के निवारण के लिए सरकार द्वारा समय-समय पर कई कदम उठाए गए हैं। राष्ट्रीय स्तर पर, नागरिकों की शिकायतों को देखने का काम दो एजेंसियाँ करती हैं। ये एजेंसियाँ है– (i) प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग, जो कार्मिक, लोक शिकायत और पेंशन मंत्रालय के अंतर्गत आता है और (ii) जन शिकायत निदेशालय, जो कैबिनेट सचिवालय के अंतर्गत आता है। नागरिकों की शिकायतों के लिए इन दो नोडल एजेंसी के अतिरिक्त कुछ और संस्थाएँ भी है, जिसके बारे में चर्चा आगे के पृष्ठों में की गई है।

केन्द्रीय सतर्कता आयोग

केन्द्रीय सतर्कता आयोग (सी.वी.सी) की स्थापना 1964 में भारत सरकार के कार्यकारी प्रस्ताव द्वारा, संथानम समिति की सिफारिशों के परिणामस्वरूप की गई। यह एक गैर संवैधानिक निकाय है, जो कार्मिक मंत्रालय के अधिकार क्षेत्र में आता है। केन्द्रीय सतर्कता आयोग की अध्यक्षता केन्द्रीय सर्तकता आयुक्त करता है जिसकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होती है। इसका कार्यकाल पाँच वर्ष या 65 वर्ष की आयु (इनमें से जो पहले हो) तक के लिए होता है। सेवा निवृत्ति के पश्चात् यह केन्द्र या राज्य सरकार के अंतर्गत कोई भी रोजगार नहीं स्वीकार कर सकता है। आयुक्त के अतिरिक्त, आयोग में कई और पदाधिकारी होते हैं, जैसे कि सचिव, आफिसर ऑन स्पेशल ड्यूटी (ओ.एस.डी.), मुख्य तकनीकी आयुक्त, विभाग के जाँच के लिए आयुक्त, अवर सचिव तथा तकनीकी आयुक्त। इसके क्षेत्राधिकार में सार्वजनिक उपक्रमों, कॉर्पोरेट निकायों और केन्द्र सरकार के अंतर्गत कार्यरत् अन्य संस्थान, दिल्ली मेट्रोपोलिटन काउंसिल और नई दिल्ली नगरपालिका समिति के सभी कर्मचारी आते हैं।

केन्द्रीय सतर्कता आयोग उन मामलों की जाँच करता है जिसमें किसी लोक सेवक पर आरोप लगा है कि उसने गलत एवं भ्रष्ट तरीके से कार्य किया है। यह एजेंसियों से रिपोर्ट मांगता है ताकि उनका नियंत्रण और निरीक्षण कर उन पर संपूर्ण सतर्कता बरत सके। यह प्रक्रियाओं और प्रचलनों की जाँच की समीक्षा शुरू कर सकता है। यह शिकायतों को आगे की कार्यवाई के लिए, उसे अपने प्रत्यक्ष नियंत्रण में ले सकता है।

केन्द्र की भांति, प्रत्येक राज्य में राज्य सतर्कता आयोग होता है। साथ ही जिला स्तर पर, एक जिला सतर्कता अधिकारी होता है। इन सबका काम सरकार के कार्यों

पर नजर रखना है और साथ ही यह भी सुनिश्चित करना है कि प्रशासन नियमों का पालन करते हुए सुचारू रूप से चल रहा है।

अतः यह पाया गया है कि देश भर में, सतर्कता एजेंसी का जाल फैला हुआ है। ये अभिकरण सतर्कता तंत्र के माध्यम से सरकारी कर्मचारियों के उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करने के लिए जिम्मेदार हैं।

लोकपाल और लोकायुक्त

केन्द्रीय सतर्कता आयोग के प्रावधान के बावजूद भी नागरिकों के लिए प्रभावी शिकायत निवारण तंत्र की आवश्यकता तथा मांग बनी रही। इसी क्रम में 1966 में गठित प्रशासनिक सुधार आयोग ने नागरिकों के शिकायत के निवारण को प्राथमिकता देते हुए, ओम्बुडसमैन जैसी एक संस्था के निर्माण की सिफारिश की। आयोग ने यह तर्क दिया कि इस संस्था के माध्यम से, बुरी तरह से प्रभावित नागरिकों के मन से अन्याय की भावना को दूर किया जा सकेगा। साथ ही प्रशासनिक तंत्र की दक्षता के प्रति जनता में विश्वास जगाया जा सकेगा (जैन, 1956, पृ.376)। भारत में ओम्बुडसमैन जैसी संस्था अपनाए जाने में आने वाली कठिनाइयों का सूक्ष्म परीक्षण करने के पश्चात, आयोग ने यह महसूस किया कि नागरिकों के शिकायतों के निवारण के लिए स्वतंत्र संस्थाओं/सत्ता की स्थापना करना उचित एवं संभव है। अतः आयोग ने यह सिफारिश की कि लोकपाल एवं लोकायुक्त नामक दो विशेष प्राधिकरण की स्थापना की जाए। लोकपाल केन्द्र स्तर पर स्थित होगा और मंत्रियों एवं सचिवों के प्रशासनिक गतिविधियों के विरूद्ध शिकायतों को सुलझाएगा तथा प्रत्येक राज्य में लोकायुक्त होगा जो निर्दिष्ट उच्च अधिकारियों के प्रशासनिक गतिविधियों के विरूद्ध शिकायतों का निपटारा करेगा।

प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों के परिणामस्वरूप, भारत सरकार ने मई 1968 में, लोकपाल तथा लोकायुक्त नामक एक विधेयक लोक सभा में पेश किया। 20 अगस्त 1968 को लोक सभा द्वारा पारित होने के पश्चात इसे राज्य सभा भेजा गया। हालांकि यह विधेयक पारित नहीं हो पाया क्योंकि दिसम्बर 1970 में लोक सभा भंग हो गई। 1971 में इस विधेयक को पुनः लोक सभा में पेश किया गया। परन्तु यह पारित नहीं हो पाया। इसके पश्चात् लोकपाल एवं लोकायुक्त की स्थापना हेतु कई प्रयास किए गए परन्तु विभिन्न कारणों की वजह से यह विधेयक पारित नहीं हो पाया। अन्ना हजारे द्वारा चलाए गए आंदोलन के परिणामस्वरूप ये विधेयक अंततः दिसंबर 2013 में पारित हो पाया।

हालांकि इस बीच, लोकपाल विधेयक की विफलता के पश्चात्, कुछ राज्यों ने लोकायुक्त विधेयक पेश करने की शुरुआत की। लोकायुक्त अधिनियम पारित करने वाला पहला राज्य ओडिशा था। यहाँ 1970 में लोकायुक्त संस्था का निर्माण किया गया। इसके पश्चात् कई राज्यों ने लोकायुक्त संस्था का निर्माण किया जैसे कि 1972

में महाराष्ट्र, 1973 में राजस्थान, 1974 में बिहार, 1975 में यू.पी., 1979 में कर्नाटक, 1981 में मध्य प्रदेश, 1983 में आंध्र प्रदेश, 1986 में गुजरात, 1995 में पंजाब, इत्यादि। इन राज्यों में लोकायुक्त की स्थापना लोक सेवकों, राजनीतिक कार्यपालिका, विधायकों, राज्य सरकार के अधिकारियों, स्थानीय निकायों, लोक उद्यमों तथा सरकार के अन्य यंत्रों के व्यवहार से उत्पन्न शिकायतों या गड़बड़ियों की जाँच करने के लिए हुई।

अधिकांश राज्यों में लोकायुक्त का कार्यकाल पाँच वर्ष या 65 वर्ष की आयु तक (इसमें जो पहले हो) होता है। इसकी पुनः नियुक्ति का कोई प्रावधान नहीं है। जहाँ तक लोकायुक्त के संरचना का संबंध है, विभिन्न राज्यों में भिन्नताएँ पाई जाती हैं। सामान्य तौर पर, लोकायुक्त राज्य के विधायिका के प्रति जिम्मेदार होता है। लोकायुक्त के पास यह शक्ति है कि वह अपने आप ही जाँच की प्रक्रिया शुरू कर सकता है और जरूरत पड़ने पर राज्य सरकार से संबंधित प्रासंगिक फाइल और दस्तावेज को मंगाकर जाँच कर सकता है।

विभिन्न राज्यों में लोकायुक्त की कार्यप्रणाली को देखने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि हालांकि उन्हें व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं परन्तु उन्हें सही ढंग से इन शक्तियों को प्रयोग करने की अनुमति नहीं दी जाती है। इन कार्यों को पूरा करने में उन्हें राज्य के राजनीतिक नेतृत्व से बहुत कम समर्थन मिलता है। लोकायुक्त को समर्थन देने के बजाय, राजनीतिक नेतृत्व सदैव उनके काम में हस्तक्षेप करते हैं और उन्हें स्वतंत्र एवं निष्पक्ष रूप से काम नहीं करने देते संभवतः इस डर से कि लोकायुक्त कहीं उनके गलत कामों का खुलासा न कर दें। चूंकि कोई भी दल भ्रष्टाचार से परे नहीं है, इसलिए लोकायुक्त प्रभावी तरीके से भ्रष्टाचार के मुद्दे का समाधान नहीं कर पाएगा (जैन, 1976, पृ. 396)।

सामान्य तौर पर यह पाया गया है कि राज्य सरकार की उदासीनता के परिणामस्वरूप लोकायुक्त अक्सर विवादों से घिरा रहता है। लोकायुक्त की कार्यप्रणाली और कामकाज के संबंध में मिश्रित तस्वीर देखी गई है। कुछ उदाहरण यह चिन्हित करते हैं कि लोकायुक्त ने अति सक्रिय रूप से कार्य किया है, तो कुछ अन्य उदाहरण यह दर्शाते हैं कि वह चाह कर भी स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं कर पाता।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि सिर्फ लोकपाल और लोकायुक्त के गठन/निर्माण मात्र से नागरिकों की शिकायतों का निवारण नहीं हो पाएगा। प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी नागरिकों के शिकायत निवारण की समस्याओं पर अपने अंतरिम रिपोर्ट में यही बात कही थी। आयोग का मानना था कि इन संस्थाओं के निर्माण मात्र से नागरिकों के शिकायतों का निवारण नहीं हो पाएगा। ये संस्थाएं शिकायत निवारण का ढांचा मात्र उपलब्ध कराते हैं। सरकारी संस्थाओं में उच्च स्तर के भ्रष्टाचार को नियंत्रित करने या रोकने के लिए ये संस्थाएं पर्याप्त नहीं हैं। इस प्रकार के कई और स्वतंत्र तथा पर्याप्त रूप से शक्तिशाली सतर्कता निकायों की स्थापना की जरूरत है

(सरकार, 2010, पृ. 305) ताकि सही अर्थों में व्यवस्था को भ्रष्टाचार मुक्त बनाया जा सके और साथ ही नागरिकों की शिकायतों का निवारण भी हो सके। इस दिशा में सूचना का अधिकार अधिनियम एक सराहनीय कदम है।

सूचना का अधिकार अधिनियम

सूचना का अधिकार लोक प्रशासन के क्षेत्र में एक प्रमुख विषय के रूप में उभरा है। शिकायत निवारण प्रणाली के क्षेत्र में यह इस सदी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सामाजिक नवप्रवर्तन है। वर्तमान समय में यह विचार विमर्श का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गया है। विकासशील देशों में शासन को बेहतर बनाने में नीति पैकेज के महत्वपूर्ण तत्व के रूप में इसकी सिफारिश निरन्तर की जा रही है। वास्तव में, यह शासन प्रक्रिया में खुलापन, पारदर्शिता और उत्तरदायित्व लाने का महत्वपूर्ण यंत्र बन गया है। साथ ही नागरिकों के शिकायत निवारण का भी। स्थानीय शासन और विकास क्रियाओं में जन सहभागिता के माध्यम से यह जमीनी लोकतंत्र के आधार को भी मजबूत करता है। दूसरे शब्दों में, सूचना का आधार सु-शासन की मूल आवश्यकता है।

सूचना के अधिकार की उत्पत्ति मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा (यू.डी.एच. आर.) 1948 से हुई है। यू.डी.एच.आर. के अनुच्छेद 19 में इसका वर्णन मिलता है। यह एक मौलिक मानव अधिकार है तथा सभी स्वतंत्रताओं के लिए कसौटी है जिसके प्रति संयुक्त राष्ट्र प्रतिबद्ध है (संयुक्त राष्ट्र महासभा प्रस्ताव, 1946)। 1766 में नागरिकों को यह स्वतंत्रता देने वाला पहला देश स्वीडन था। हालांकि, अन्य देशों ने इसे काफी देर से अपनाया। बहुत सारे देशों ने इसका प्रावधान बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तथा इक्कीसवीं शताब्दी के शुरूआत में किया। फिन्लैंड ने 1951, डेनमार्क तथा नार्वे ने 1970 तथा अमेरिका ने 1966 में इसे अपनाया। ब्रिटेन शुरू से ही गोपनीयता बनाए रखने में विश्वास करता था। ब्रिटेन में ऑफिशियल सीक्रेट एक्ट था। 2000 में *फ्रीडम ऑफ इन्फार्मेशन* अधिनियम, लाया गया जिसे 2005 में संशोधित किया गया।

भारतीय परिदृश्य

भारत में, सरकारी सूचना का खुलासा ब्रिटिश शासन के दौरान बनाए गए एक कानून द्वारा शासित होता है। यह कानून था 1889 का ऑफिशियल सीक्रेट एक्ट जिसे 1923 में संशोधित किया गया। भारत के संविधान में *फ्रीडम ऑफ इन्फार्मेशन* का स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता। हालांकि, संविधान के अनुच्छेद 19 (i) (अ) में सूचना का अधिकार शामिल है जब हम उसे यू.डी.एस.आर. के अनुच्छेद 19 के साथ पढ़ते हैं। यहाँ तक कि भारत का उच्चतम न्यायालय भी इस अधिकार की व्याख्या अनुच्छेद 19 (i) (अ) के भाग के रूप में करता है। उच्चतम न्यायालय ने 1975 में *स्टेट ऑफ यू.पी. बनाम राज नारायण* मामले में निर्णय देते हुए इस प्रस्ताव की अभिव्यक्ति की थी (चड्ढा, 2006, पृ. 5-6)।

इस निर्णय के पश्चात, उच्चतम न्यायालय ने समय-समय पर नागरिकों को यह अधिकार देने की बात कही है ताकि नागरिक सरकार की कार्यविधि पर अपने विचार अभिव्यक्त कर सकें और साथ ही अपने शिकायतों का निवारण भी। इसके अतिरिक्त, नागरिकों को सूचना के अधिकार के संदर्भ में, राजनीतिक प्रतिबद्धता भी रही है। 1977 में, जनता पार्टी ने एक खुली सरकार का वादा किया और यह घोषणा की कि अपने व्यक्तिगत फायदे के लिए सरकारी सत्ता एवं सुरक्षा सेवाओं का दुरूपयोग नहीं करेगी। (गुहा राय, 2003, पृ. 313)। 1977 में सत्ता में आने के पश्चात्, प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने एक कार्यकारी समूह का गठन किया और इसे *ऑफिशियल सीक्रेट एक्ट* में परिवर्तन करने का काम सौंपा ताकि जनता तक सूचना के अधिक प्रवाह को सुसाध्य बनाया जा सके। हालांकि, कार्यकारी समूह ने उस अधिनियम में कोई परिवर्तन नहीं सुझाया।

इस दिशा में दूसरा प्रयास 1989 में किया गया। सरकार *बोफर्स* सौदा से संबंधित सूचना का खुलासा करने के लिए तैयार नहीं थी (गुहा राय, 1990, पृ. 493)। राष्ट्रीय मोर्चा ने अपने घोषणा पत्र में एक खुली सरकार के प्रति अपनी प्रतिबद्धता की बात कही और यह भी कहा कि नागरिकों को सूचना का अधिकार संवैधानिक प्रावधानों द्वारा उपलब्ध कराएगी। सत्ता में आने के पश्चात, वी.पी. सिंह की सरकार ने ऑफिशियल सीक्रेट एक्ट को संशोधित करने का वायदा किया परन्तु इससे पहले की वह ऐसा कर पाती, वह सरकार स्वतः गिर गई।

इन सब प्रयासों के परिणामस्वरूप, सूचना के अधिकार की मांग और तीव्र हुई और इसने एक जन आंदोलन का रूप ग्रहण कर लिया। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबंधन की सरकार ने संसद में *फ्रीडम ऑफ इनफोर्मेशन* बिल, 2000 पेश किया। अंततः 2005 में यू.पी.ए. की सरकार ने सूचना का अधिकार अधिनियम पारित किया।

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के प्रावधान

सूचना का अधिकार अधिनियम 13 अक्टूबर, 2005 को पूरी तरह से लागू हो गया। यह भारत के नागरिकों को केन्द्र तथा राज्य सरकारों के रिकार्ड तक पहुँच उपलब्ध कराता है। इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार, कोई भी नागरिक (जम्मू और कश्मीर के नागरिक सहित), किसी सार्वजनिक प्राधिकरण से सूचना को देखने का अनुरोध कर सकता है और जिसका उत्तर जल्द से जल्द या तीस दिनों के अंदर देना होता है। अधिनियम के अनुसार, प्रत्येक सार्वजनिक प्राधिकरण को अपने रिकार्ड कम्प्यूटरीकरण प्रसार के लिए करना होगा तथा अतिसक्रिय रूप से सूचना को वेबसाइट पर प्रकाशित करना होगा ताकि नागरिकों को औपचारिक रूप से कम से कम सूचना की मांग का अनुरोध करने की आवश्यकता पड़े। यह अधिनियम भारत के सभी राज्यों एवं संघ शासित प्रदेशों पर लागू होता है। इसके क्षेत्राधिकार के अंतर्गत

केन्द्र तथा राज्य स्तरों के सभी संवैधानिक प्राधिकरण जैसे– विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका आते हैं साथ ही पंचायती राज संस्थाएं और स्थानीय निकाय भी। यह उन निकायों पर भी लागू होता है जिसका स्वामित्व, या नियंत्रण या वितयन सरकार द्वारा होता है।

यहां तक कि वे गैर-सरकारी संस्थान भी इसके क्षेत्राधिकार में आते हैं जिसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष वितयन सरकार द्वारा होता है। हालांकि, यह अधिनियम निजी क्षेत्र पर लागू नहीं होता।

सूचना के अधिकार की परिभाषा

सूचना की मांग करने वाला व्यक्ति संबंधित कार्यालय के *पब्लिक इन्फोर्मेशन ऑफिसर* (पी.आई.ओ.) को लिखित रूप में या इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से आवेदन के अनुरोध को जमा कर सकता है। आवेदन के साथ 10 रुपये की निर्धारित शुल्क राशि लगानी होगी। आवेदन में मांगी गई सूचना का ब्यौरा निर्दिष्ट होना चाहिए। आवेदन प्राप्त होने के 30 दिन के अंदर या तो उसका जवाब देना होगा या अधिनियम में निर्दिष्ट कारणों को बताते हुए उसे खारिज कर दिया जायेगा। हालांकि, जब किसी व्यक्ति के जीवन या स्वतंत्रता का प्रश्न होगा, ऐसी स्थिति में पी.आई.ओ. को 48 घंटे के अंदर जवाब देना होगा।

सूचना का अधिकार अधिनियम, भाग 2 (i) के अंतर्गत नागरिकों को अधिकार है कि वह किसी सूचना की मांग कर सकते (जैसा कि परिभाषित) हैं। दस्तावेजों की प्रतिलिपियाँ ले सकते हैं। दस्तावेजों, कार्यों और रिकार्ड की जाँच कर सकते हैं। कार्य के सामग्री के प्रमाणित सैम्पल ले सकते हैं। साथ ही सूचना को प्रिंटआउट, टेप, सी. डी., डी.वी.डी., या किसी अन्य इलेक्ट्रॉनिक मोड में प्राप्त कर सकते हैं।

सूचना के अधिकार का महत्व

सु-शासन को सुनिश्चित करने तथा शिकायत निवारण यंत्र के रूप में सूचना के अधिकार के महत्व पर बल देते हुए द्वितीय ए.आर.सी. की पहली रिपोर्ट में निम्न अवलोकन किया:

(1) सु-शासन के बगैर, कोई भी विकासात्मक योजना नागरिकों के जीवन की गुणवत्ता को बेहतर नहीं बना सकता।

(2) सु-शासन के चार तत्व हैं– पारदर्शिता, उत्तरदायित्व सहभागिता तथा पूर्वानुमान। पारदर्शिता का अर्थ आम जनता तक सूचना को उपलब्ध कराना है। साथ ही सरकारी संस्थाओं की कार्यप्रणाली के बारे में स्पष्टता प्रदान करना है।

आर.टी.आई. सरकार के रिकार्ड को सार्वजनिक जाँच के लिए खोलता है और इस प्रकार नागरिकों को एक यंत्र प्रदान करता है जिसके द्वारा उन्हें यह सूचना मिलती है

कि सरकार क्या करती है और कितने प्रभावी रूप से करती है। और इस प्रकार से सरकार को अधिक उत्तरदायी बनाता है। सरकारी संगठनों में पारदर्शिता की वजह से वे अधिक उद्देश्यपरक रूप से कार्य करते हैं जिसके कारण पूर्वानुमान को बढ़ाया जा सकता है। सरकार की कार्यप्रणाली के बारे में सूचना, शासन प्रक्रिया में नागरिकों की प्रभावी भागीदारी को भी सुसाध्य बनाता है। मूल अर्थ में, आर.टी.आई सु-शासन की एक मूल आवश्यकता है (गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, 2006, पृ.1)।

अगर आर.टी.आई. सही तरीके से क्रियान्वित होती है तो, शासन में अधिक पारदर्शिता और उत्तरदायित्व को सुनिश्चित किया जा सकेगा। यह न सिर्फ भ्रष्टाचार, गोपनीयता और नागरिकों के प्रति नौकरशाहीकृत उदासीनता को नियंत्रित करता है बल्कि नागरिकों को उनका सही/उचित देय भी उपलब्ध कराएगा। इसका प्रभावी क्रियान्वयन सतर्कता का माहौल निर्मित करेगा। जिसकी वजह से अधिक सहभागी लोकतांत्रिक कार्यप्रणाली विकसित होगी (गोयल, 2007, पृ. 549)।

भ्रष्टाचार से लिप्त व्यवस्था जो कि वंचित नागरिकों के प्रति अधिक संवेदनहीन बन चुकी थी, आर.टी.आई ने ऐसी व्यवस्था में नागरिकों को सशक्त बनाने का वादा पूरा किया है ताकि उत्तरदायित्व को सुनिश्चित किया जा सका और आर.टी.आई. सु-शासन के लागूकर्ता के रूप में कार्य कर सके (गांधी, 2009)। आर.टी.आई एक Torch Bearer (मशाल वाहक) है जो एक अधिक खुला, उत्तरदायी, जिम्मेदार तथा जन-अनुकूल शासन प्रदान कर सकता है।

आर.टी.आई भारत में जमीनी लोकतंत्र को मजबूत बनाने का एक अद्भुत एवं अनोखा प्रयास है। इसे सहभागी लोकतंत्र का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण आधारशिला माना गया है क्योंकि सूचना तक पहुँच शासन में उत्तरदायित्व और पारदर्शिता की भावना को बढ़ाता है। इसे एक सुधारात्मक यंत्र के रूप में देखा गया है, जो उत्तरदायित्व के सिद्धांत को सुनिश्चित करता है।

आर.टी.आई का क्रियान्वयन जमीनी स्तर पर

जमीनी स्तर पर आर.टी.आई आंदोलन की शुरुआत मजदूर किसान शक्ति संगठन (एम.के.एस.एस.) नामक एक जन संगठन द्वारा राजस्थान में अरूणा राय के नेतृत्व में की गई। हालांकि, अन्ना हजारे, निर्मला देशपांडे और पंकज राय जैसे सामाजिक कार्यकर्ताओं ने भी अपने तरीके से योगदान दिया तथा ग्रामीण जनता को उनके अधिकारों एवं विशेषाधिकारों के प्रति जागरूक बनाया। एम.के.एस.एस. एक पंजीकृत सोसाइटी है जिसकी स्थापना 1990 में विभागों द्वारा क्रियान्वित लोक कार्य एवं कार्यक्रमों से जुड़े भ्रष्टाचार से लड़ने के लिए की गई। आर.टी.आई ने पूर्ण न्यूनतम मजदूरी की गैर-अदायगी के मुद्दे पर ग्रामीण मजदूरों के संघर्ष का समर्थन किया है। इसने ग्राम पंचायतों द्वारा क्रियान्वित कार्यक्रमों विशेषकर जवाहर रोजगार योजना, जो कि केन्द्र प्रायोजित योजना है में फर्जी मस्टर रोल जैसे मुद्दों को भी उठाया।

एम.के.एस.एस. द्वारा शुरू की गई जन सुनवाई का तरीका था ढोल बजाकर गांव के लोगों को इकट्ठा करना और उसके पश्चात् सार्वजनिक कोष से चलायी जा रही कार्यों से संबंधित सभी दस्तावेजों की मांग करना है। राजस्थान में एम.के.एस.एस. ने बहुचर्चित आंदोलन संगठित किया, तथा पंचायतों से सार्वजनिक निधि के बारे में जानकारी मांगी तथा किस प्रकार खर्च किया गया है, उसके बारे में भी सूचना मांगी। जन सुनवाई के माध्यम से उन्होंने पंचायत के नेताओं और सरकारी अधिकारियों को विकास खर्च का ब्यौरा देने के लिये मजबूर किया (घोष, 2005, पृ. 269)। जनता की मांग के पश्चात कई गांवों में सरपंचों द्वारा वसूलियाँ भी की गई हैं तथा उत्तरदायित्व एवं पारदर्शिता के मुद्दों पर गांवों को गतिशील बनाने में जन सुनवाई काफी प्रभावी रही है (बैंकग्राउंड पेपर, 1999, पृ. 29)। 1994 के मध्य तक, एम.के.एस.एस. ग्रामीण लोगों को गतिशील बनाने में सफल रहा जिसके परिणाम स्वरूप पंचायतों द्वारा खर्च किए गए वित्तीय रिकार्ड की प्रतिलिपियों की विशिष्ट मांग की गई (घोष, 2005, पृ. 261)। इस तरीके से सोशल आडिट के माध्यम से पारदर्शिता, उत्तरदायित्व और शिकायत निवारण की मांग लागू हुई।

आर.टी.आई का डिजिटल निगरानी व्यवस्था के निर्माण, ऑन-साइट मस्टर रोल की जाँच, सभी रिकार्ड का अतिसक्रिय रूप से खुलासा तथा नियमित सोशल आडिट के माध्यम से आर.टी.आई को वास्तविक बनाया जा सकता है (मिश्रा, 2009, पृ. 697)। इसे पूरा करने के लिए राज्य सरकारें अलग-अलग उपकरणों। यंत्रों का प्रयोग कर रही हैं। उदाहरण के लिए, कुछ सरकारों ने नागरिक समाज संगठनों के साथ सामरिक साझेदारी कर उत्तरदायित्व यंत्रों को विकसित किया है। देश के कुछ अन्य भागों में वन-टाइम मास सोशल आडिट संचालित किया गया है, जबकि कुछ अन्यों में नागरिक समाज संगठनों के जाल (नेटवर्क) का प्रसार देखा गया है जो एक जुट होकर आडिट करते हैं, रिपोर्ट कार्ड तैयार करते हैं तथा अधिनियम के क्रियान्वयन को देखते हैं (अय्यर एवं सामजी, 2012, पृ. 232)।

जमीनी स्तर पर आर.टी.आई का प्रयोग और महत्व मनेरगा में देखा जा रहा है। मनेरगा निर्देशों के अनुसार, सरकार के सभी स्तरों को मनेरगा संबंधित सभी रिकार्ड का सही रख-रखाव करना है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि सूचना का अतिसक्रिय रूप से खुलासा किया जा रहा है, और नागरिकों को उपलब्ध कराया जा रहा है। मनेरगा के निर्देश यह तय करते हैं कि सभी सूचना को डिसप्ले बोर्ड तथा पंचायत कार्यालय की दीवारों पर चित्रकारी के माध्यम से जनता को दिखाया जाए। साथ ही, यह भी प्रावधान है कि ग्राम पंचायत स्तर पर मनेरगा आंकड़ों और उससे जुड़ी सभी सूचना जाँच के लिए सार्वजनिक रूप से उपलब्ध कराई जाए (अय्यर एवं सामजी, 2012, पृ. 235)।

आर.टी.आई के सफल क्रियान्वयन के लिये, सतर्क निगरानी, पारदर्शिता तथा उत्तरदायित्व के साथ-साथ नागरिक समाज तथा जनता की सक्रिय भागीदारी महत्वपूर्ण है। कुछ राज्यों में सरकार और नागरिक समाज संगठनों के बीच साझेदारी स्थापित की गई है। आंध्र प्रदेश सरकार में 2006 में राज्य में सभी मनेरगा कार्यक्रमों

के लिए सोशल ऑडिट को संस्थागत करने की प्रक्रिया शुरू की। सरकार ने नागरिक समाज संगठन के साथ मिलकर 35 सदस्यों वाली टीम निर्मित कर ऑडिट की प्रक्रिया का प्रबन्ध किया और उसे सुसाध्य बनाया। ऑडिट के दौरान, मनेरगा पर सरकारी खर्च की विस्तृत जानकारी का सत्यापन किया जाता है, जो ऐसेट बने उसका मूल्यांकन किया जाता है तथा मनेरगा पर सूचना ग्रामीण समुदायों के साथ साझा की जाती है। ऑडिट का समापन जन सभा के साथ किया जाता है जहाँ ऑडिट के जाँच परिणाम को स्थानीय सरकारी अधिकारियों एवं राजनीतिज्ञों की मौजूदगी में साझा किया जाता है (अय्यर तथा सामजी, 2012, पृ. 236)।

सरकार-नागरिक समाज साझेदारी राजस्थान में भी देखी गई है। नवम्बर 2007 में, राजस्थान सरकार ने रोजगार एवं सूचना का अधिकार अभियान के साथ साझेदारी कर, एक विकेन्द्रित वर्कसाइट प्रबन्धन व्यवस्था विकसित की। इस अभियान का उद्देश्य प्रशिक्षित वर्कसाइट प्रबन्धकों का एक पूल तैयार करना है जो कि वर्कसाइट का प्रति दिन मापन करेंगे और रोज का निर्गत (आउटपुट) भी निर्धारित करेंगे। इसका मूल बल पारदर्शिता पर है (अय्यर एवं सामजी, 2012, पृ. 237)।

उपरोक्त विश्लेषण से यह पता चलता है कि जमीनी स्तर पर आर.टी.आई. मनेरगा के सोशल ऑडिट द्वारा क्रियान्वित किया जा रहा है। हालांकि यह विश्लेषण सोशल ऑडिट तथा आर.टी.आई की सफलता को प्रतिबिंबित करता है, फिर भी कुछ ऐसे भी उदाहरण हैं जो यह सुझाते हैं कि मनेरगा का क्रियान्वयन सही लोकतांत्रिक और विकेन्द्रित तरीके से नहीं किया गया है। ऐसे कई उदाहरण हैं जो यह दर्शाते हैं कि मांगी गई सूचना उपलब्ध नहीं कराई गई।

मनेरगा योजनाओं के क्रियान्वयन में व्यापक अनियमितता और गड़बड़ी के मामले भी देखे गए हैं। इस प्रकार की अनियमितताएं कर्नाटक में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा चिन्हित की गई हैं (पंचायती राज अपडेट, जुलाई 2008, पृ. 6)।

दिल्ली में परिवर्तन नामक एक स्वयं सेवी संगठन आर.टी.आई के प्रयोग को सुसाध्य बनाने में काफी सफल रही है। जिसके माध्यम से शिकायतों का निवारण किया गया है, सरकारी विभागों द्वारा अधूरे कार्यों को पूरा करवाया गया है और साथ ही सरकारी कार्यों की जाँच की गई। इसने गरीबों को राशन कार्ड दिलवाने में भी मदद की (गुहा राय, 2006, पृ. 15)।

अंततः सूचना के व्यापक प्रसार और खुलासे में मीडिया ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लोगों के बीच जागरूकता बढ़ाने, सरकार के भ्रष्ट प्रचलनों का बिना किसी डर या पक्षपात के खुलासा करने, आर.टी.आई के प्रयोग तथा दुरुपयोग पर वाद-विवाद शुरू कराने और आवाज हीनों को आवाज प्रदान कराने में एक सक्रिय भागीदार की भूमिका निभाई है (मिश्रा, 2009, पृ. 701)।

निष्कर्ष

अतः हम कह सकते हैं कि शिकायत निवारण उपायों के व्यवस्थित क्रियान्वयन का नागरिकों के ऊपर प्रत्यक्ष प्रभाव हो सकता है। इस संदर्भ में कि वे स्थायी निकायों की कार्यप्रणाली पर पंचायत से जुड़े कार्यों पर सूचना मांग कर निगरानी रख सकते हैं। राजस्थान में जन सुनवाई के प्रयोग से प्राप्त अनुभव इस बात का सबूत है कि नागरिकों को अब बेवकूफ नहीं बनाया जा सकता। यह आर.टी.आई का एक बहुत ही सकारात्मक प्रभाव है। यह उम्मीद की जा सकती है कि निकटतम भविष्य में स्थानीय निकाय उत्तरदायी और सहभागी शासन द्वारा नैतिक मूल्यों को लोकतांत्रिक मूल्यों के साथ मान लेंगे। आर.टी.आई. की सफलता नागरिकों और प्रशासकों के बीच सामंजस्यपूर्ण संबंध पर निर्भर करता है। प्रशासन को मानवीय और जिम्मेदार तरीके से कार्य करना चाहिए तथा नागरिकों को प्रशासकों के साथ अर्थपूर्ण सहयोग करना चाहिये। आर. टी.आई विकेन्द्रित शासन को सुनिश्चित करने का एक प्रभावी यंत्र मात्र नहीं है बल्कि नागरिकों की शिकायत निवारण का प्रभावी यंत्र भी है। नागरिक इस यंत्र का नियमित रूप से प्रयोग कर रहे हैं तथा सरकार पर दबाव डालकर अपने शिकायत संबंधी आवश्यक सूचना प्राप्त कर रहे हैं। इस तरह से वे काफी हद तक अपनी शिकायतों का निवारण कर पाते हैं।

संदर्भ

1. बैकग्राउंड पेपर (1999), बैकगाउंड पेपर फॉर सेमिनार ऑन अकांटेबिलिटी ऑफ लोकल बॉडी एण्ड डी.आर.डी.ए., नेशनल एकाडमी ऑफ ऑडिट एण्ड अकाउंट, शिमला, 15 तथा 16 सितम्बर।
2. चड्ढा, स (2006) 'राइट को इनफॉर्मेशन रिजिन इन इंडिया : अ क्रिटिकल अप्रैजल', द इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, LII (1)।
3. घोष, बी. (2005), 'अकाउंटबिलिटी ऑफ पंचायतः एण्डस ऐण्ड मीन्स' इन एल.सी. (एडीटेड), डिसेन्ट्रालाइजेशन ऐण्ड लोकल गर्वेनेन्स, नई दिल्ली, ओरिएन्ट लौंगमैन।
4. गवर्नमेंट ऑफ इंडिया (1966) 'एडमिनिस्ट्रेटिव रिफार्मस कमीशन', इंटेरिम रिपोर्ट ऑन प्रॉब्लम ऑफ रीड्रेस ऑफ सीटिजेंस ग्रीवांसेस, न्यू दिल्लीः गर्वनमेंट ऑफ इंडिया।
5. गर्वनमेंट ऑफ इंडिया (2006) 'सेकेन्ड एडमिनिस्ट्रेटिव रिफार्मस कमीशन', फस्ट रिपोर्ट ऑन राइट टु इंर्फोमेशनः मास्टर की टु गुड गर्वनेन्स, पारा.1.1.1.
6. जैन, आर.बी. (1976), कन्टेम्पोरेरी इसुस इन इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली, विशाल पब्लिकेशन।
7. मिश्रा, श्वेता (2009), 'राइट टु इंफार्मेशन एण्ड डीसेन्ट्रलाइजड गर्वनेन्स, द इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, LV (3)।
8. पंचायती राज अपडेट (2008), इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल सांइसेस, XV (7)।
9. रोवाट, डी.सी. (1968) 'द स्प्रेड ऑफ ओम्बुडसमैन आइडिया' इन ऐन्डरसन, एस.बी.

(एडीटेड), ओम्बुडसमैन फॉर अमेरिकन गवर्नमेंट, ऐन्यालवुड क्लीफस (एन.जे.), प्रिंसटन हौल।

10. राय, जे.जी. (1990), 'ओपेन गवर्नमेंट ऐन्ड एडमिनिस्ट्रेटिव कलचर इन इंडिया', द इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 36 (3)।
11. राय, जे.जी. (2003) 'राइट टु इंफॉर्मेशनः अ की टु अकांटेबल ऐण्ड ट्रान्सपैरेन्ट एडमिनिस्ट्रेशन', इन धमेजा, ए. (एडिटेड), कन्टेम्परेरी डीबेटस इन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली, प्रिंटिस हौल ऑफ इंडिया।
12. राय, जे.जी (2006), राइट टु इंफॉर्मेशन इनिसिएटिक्स ऐन्ड इम्पैक्ट, ओकेशनल पेपर, नई दिल्ली, इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन।
13. सरकार, एस. (2010), पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, नई दिल्ली, पी.एच.आई।
14. अय्यर, वाई. ऐन्ड सामजी, एस. (2012), 'गैरेन्टेडिंग गुड गर्वनेन्स : अंडरस्टैन्डिंग दी इफैक्टिवनेस ऑफ अकाउंटिबिलिटी मैकेनिज्मस', इन नरेगा, दी नेशनल रूरल एमप्लॉयमेंट गैरेन्टी ऐक्ट डिजाइन, प्रोसेस ऐन्ड इम्पैक्ट, नरेगा नॉलेज नेटवर्क, अवलेबल फ्रॉमः indiagovernance.gov.in/files/strengtheningpublicaccountability (असेसड 16 अगस्त, 2014)।
15. गांधी, एस. (2009), 'राइट टु इन्फॉर्मेशन आ टूल टु इंप्रूव द गर्वनेन्स ऑफ इंडिया' अवलेबल फ्रॉमः http://www.bcasonline.org (असेसड 18 अक्टूबर, 2014)।